शब्द–ब्रह्म
E ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
17 जुलाई 2017
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

पातंजल योग दर्शन में मोक्ष के विविध मार्ग

डॉ. पुनीत कुमार मिश्रा
योग एवं प्राकृतिक चिकित्सक
पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य पारमार्थिक चिकित्सालय
गायत्री तपोभूमि
मथुरा, उत्तरप्रदेश, भारत

शोध संक्षेप

भारतीय दर्शन में मोक्ष अथवा कैवल्य की अवधारणा अत्यंत प्राचीन है। चौरासी लाख योनियों के बाद मनुष्य जन्म प्राप्त होता है और इसीमें मनुष्य जन्म-मरण और आवागमन के चक्र से अपने को मुक्त कर सकता है। मोक्ष प्राप्ति का तात्पर्य आत्मा का स्वरूप में प्रतिष्ठित होने से है। योग दर्शन तत्वमीमांसा के प्रश्नों में न उलझकर मोक्ष मुख्यत: मोक्ष प्राप्ति के उपायों का सैद्धांतिक और व्यावहारिक विवेचन करता है। महर्षि पतंजलि द्वारा प्रस्तुत योगशास्त्र में 195 सूत्र हैं। यह जादू की नहीं बल्कि गणित की पुस्तक है। शरीर, मन और बुद्धि को अपने नियंत्रण में लेने की विधियों का उल्लेख योगशास्त्र में किया गया है और अंतिम उपलब्धि 'मोक्ष' को बताया है। प्रस्तुत शोध पत्र में पातंजल योग दर्शन में मोक्ष के विविध मार्ग पर प्रकाश डाला गया है।

भूमिका

सांख्य दर्शन के पूरक दर्शन के नाम से प्रसिद्ध योग दर्शन एक अत्यन्त व्यावहारिक दर्शन है। इस दर्शन का मुख्य लक्ष्य मनुष्य को वह मार्ग दिखाना है, जिसको अपनाकर मनुष्य जीवन का परम लक्ष्य मोक्ष प्राप्त कर सके।1 योग दर्शन के प्रणेता महर्षि पतंजलि शेषावतार के रूप में जाने जाते हैं तथा 'योगसूत्र' इस दर्शन का प्रामाणिक और प्राचीनतम ग्रन्थ है। मानव जीवन का प्रमुख लक्ष्य समस्त दु:खों, क्लेशों, वासनाओं और आसक्ति से मुक्त होकर सच्चे सुख, शान्ति और आनन्द को प्राप्त करना है। हमारे भारतवर्ष के ऋषि-मुनियों ने इसके निमित्त विभिन्न प्रकार के जप, तप, भक्ति, तथा अनेक उपासनाओं का विधान पात्र-भेदानुसार किया है, उन साधनों से व्यक्ति लौकिक जीवन में सुख और सफलताएँ अर्जित करने के साथ-साथ मरणोपरान्त स्वर्गिक सुख की प्राप्ति भी कर सकता है। इन सबके अतिरिक्त जीवन का मुख्य उद्देश्य कैवल्य की प्राप्ति करना है जिसमें प्रज्ञा ;सत्य ज्ञानद्ध प्रधान अंग के रूप में कार्य करती है, कैवल्य प्राप्ति के निमित्त उच्च साधनों की आवश्यकता पड़ती है और उन उच्च साधनों में 'योग' अति महत्त्वपूर्ण साधन है।2 योग दर्शन में जिन सैद्धान्तिक साधनों का वर्णन किया गया है, वह सभी पूर्ण रूप से व्यावहारिक, क्रियात्मक तथा निदानात्मक रूप में वर्णित किये गये हैं और प्रत्येक योग अभ्यासी साधक इसकी सत्यता तथा प्रामाणिकता का परीक्षण स्वयं कर सकता है। मुनि पतंजलि केवल आध्यात्मिक सिद्धांतों का निरूपण मात्र ही नहीं करते अपितु व्यावहारिक जीवन शैली में उनकी महत्ता तथा उपयोगिताओं को बताने के

शब्द–ब्रह्म
E ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
17 जुलाई 2017
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

साथ-साथ यह भी स्पष्ट करते हैं कि शरीर और मन के रोगों तथा दोषों को दूर कर स्वास्थ्य और सुख की उपलब्धि, बुद्धि (प्रज्ञा) का विकास करके अनुशासित तथा संयमित जीवन शैली अपनाकर आत्मज्ञान अथवा मोक्ष/कैवल्य की प्राप्ति सुनिश्चित की जा सकती है।3

पातंजल योग दर्शन

योग दर्शन में आध्यात्मिक, आधिभौतिक तथा आधिदैविक तीनों प्रकार के दुःखों का वर्णन किया गया है और इन तीनों दुःखों का मूल कारण अविवेक है। अविवेक, बन्धन का भी कारण है।4 अतः दुःखों से आत्यन्तिक निवृत्ति और मोक्ष की प्राप्ति अर्थात् - चिति शक्ति का अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित होना5 इस दर्शन का मूल तथा मुख्य प्रतिपाद्य विषय है। योग दर्शन में मुनि पतंजलि ने कैवल्य प्राप्ति के विविध योग मार्गों, साधनों का वर्णन पात्र भेदानुसार किया है और उन सभी साधनों का आधार और मूल उद्गम स्थल पतंजलि का योग राजयोग है। मुनि पतंजलि के अनुसार- 'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः'6 अर्थात्- चित्तवृत्तियों का निरोध योग है।

अभ्यास-वैराग्य योग/कर्म-अनासक्ति योग : अभ्यासवैराग्याभ्यांतन्निरोधः'7 अर्थात् - सभी प्रकार की चित्तवृत्तियों के निरोध के लिये अभ्यास और वैराग्य साधन के रूप में हैं। यह अभ्यास और वैराग्य रूपी साधन को कर्मयोग तथा अनासक्ति योग के रूप में जानना चाहिए। अभ्यास-वैराग्य योग को संयुक्त रूप से निष्काम कर्मयोग के रूप में जानना चाहिए। यह अभ्यास-वैराग्य योग उत्तम श्रेणी के साधकों के लिये है। अभ्यास और वैराग्य योग, योग साधना में मुख्य और सहायक अंग के रूप में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं क्योंकि अभ्यास और वैराग्य द्वारा चित्तवृत्तियों का निरोध सम्भव है। यह अभ्यास-वैराग्य/ कर्म-अनासक्ति योग कहलाता है।

भक्तियोग/शरणागति योग/प्रेमयोग : मुनि पतंजलि के अनुसार- 'ईश्वरप्रणिधानाद्वा'8 अर्थात्- ईश्वर के शरणापन्न हो जाने का नाम ईश्वर प्रणिधान है। ईश्वर - शरणापन्न हो जाना शरणागति योग है। ईश्वर के नाम, रूप, लीला, गुण, धाम तथा प्रभाव आदि का श्रवण, मनन और कीर्तन करना तथा अपने समस्त कर्मों को भगवान के प्रति समर्पित कर देना9, उन्हीं (ईश्वर) में अनन्य प्रेम का भाव रखना, 'सा त्वस्मिन् परमप्रेमरूपा'10 अर्थात् - भक्ति परम प्रेम के रूप में है और ईश्वर के प्रति अनन्य प्रेम का भाव रखना प्रेम योग कहलाता है, क्योंकि भक्ति ही प्रेम स्वरूपा है।

मंत्र योग : मुनि पतंजलि के अनुसार- 'तस्य वाचकः प्रणवः'11 अर्थात् - उस ईश्वर का वाचक यानी नाम- प्रणव ॐ है और उस परम ब्रह्म का नाम है। हमारे हिन्दू धर्म शास्त्रों में भगवान् के नाम जप का विशेष महत्त्व है। वेदों की उत्पत्ति और पूर्णाहूति ॐ पर ही हुई है। ॐ एकाक्षरी बीजमंत्र है।

जप योग : मुनि पतंजलिके अनुसार- 'तज्जपस्तदर्थभावनम्'12 अर्थात् - उस परम ब्रह्म का नाम ॐ और उसके अर्थस्वरूप परमेश्वर का चिन्तन/मनन करना13 जपयोग कहलाता है। प्रश्न उपनिषद् के पाँचवे प्रश्नोत्तर14 में और माण्डूक्योपनिषद् में ओंकार के जप, ध्यान और उपासना15 का वर्णन विस्तार से किया गया है।

ध्यान योग : मुनि पतंजलि के अनुसार- 'तत्र प्रत्यैकतानता ध्यानम्'16 अर्थात्- जिस स्थान पर चित्त को लगाया जाए, उसी में वृत्ति का एकतार चलना ध्यान है। ध्यान दो प्रकार का

शब्द–ब्रह्म
E ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
17 जुलाई 2017
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

होता है - 1. सगुण ध्यान17 2. निर्गुण ध्यान18। सगुण ध्यान, भक्तियोग और निर्गुण ध्यान, ज्ञानयोग के अन्तर्गत है। ध्यान के द्वारा ईश्वर दर्शन, आत्मबोध, ब्रह्मज्ञान प्राप्ति सहज में ही संभव है। 'यथाभिमत ध्यानाद्वा'19 अर्थात् - साधक को अपनी रूचि के अनुसार इष्ट का ध्यान तथा स्मरण करना चाहिए। 'ततः प्रत्यकचेतनाधिगमोऽप्यन्तरायाभाव'20 अर्थात्- इष्ट के ध्यान या स्मरण से विघ्नों का अपने आप नाश हो जाता है और अन्तरात्मा के स्वरूप का ज्ञान होकर कैवल्य/मोक्ष की प्राप्ति होती है इसे ध्यान योग के अन्तर्गत मानना चाहिए।

क्रिया योग : मुनि पतंजलि के अनुसार - 'तपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि क्रियायोगः'21 अर्थात् - तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान ये तीनों अंग क्रियायोग के अन्तर्गत हैं। तप को तपयोग, स्वाध्याय को स्वाध्याय योग और ईश्वर प्रणिधान को भक्तियोग के रूप में जानना चाहिए।

तपयोग : अपने वर्ण, आश्रम, परिस्थिति और योग्यता के अनुसार - स्वधर्म का पालन करना और यदि उसके पालन में जो भी शारीरिक अथवा मानसिक कष्ट अधिक से अधिक प्राप्त हो, उसे सहर्ष सहन कर लेना तपयोग कहलाता है। निष्काम भाव से तप का पालन करने पर मनुष्य का अन्तःकरण पवित्र और शुद्ध हो जाता है।22

स्वाध्याय योग : ऐसा साधन जिससे अपने कर्तव्य और अकर्तव्य का बोध हो सके, भगवान् नाम जप - ॐ गायत्री, गुरू। इष्ट देवता के मंत्र का जप, स्वाध्याय कहलाता है। अपने जीवन के अध्ययन का नाम स्वाध्याय कहलाता है।23 'स्वाध्याय ज्ञानयज्ञाश्च'24 अर्थात्- स्वाध्याय, ज्ञानयज्ञ के रूप में है।

ईश्वर प्रणिधान (भक्ति योग) : ईश्वर के प्रति पूर्ण समर्पण का भाव ईश्वर प्रणिधान (भक्ति योग) कहलाता है।25 समाधिभावनार्थः क्लेशतनूकरणार्थश्च26 अर्थात् - यह क्रियायोग अविद्या आदि दोषों को क्षीण कर समाधि की सिद्धि देने वाला है। 'समाधि सिद्धिरीश्वर प्रणिधानात्'27 अर्थात् - ईश्वर प्रणिधान से समाधि की सिद्धि होती है।

प्रज्ञायोग/बुद्धि योग : मुनि पतंजलि के अनुसार- 'ऋतम्भरा तत्र प्रज्ञा'28 अर्थात् निर्विचार समाधि के अभ्यास से योगी की बुद्धि अत्यन्त स्वच्छ तथा निर्मल हो जाती है, ऐसी अवस्था में योगी की बुद्धि वस्तु के सत्य (यथार्थ) स्वरूप को ग्रहण करने वाली होती है। ऋतम्भरा प्रज्ञा में किसी भी पदार्थ या वस्तु के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान होता है। 'तस्य सप्तधा प्रान्तभूमिः प्रज्ञा'29 अर्थात्- विवेक ज्ञान प्राप्त साधक की सात प्रकार की उत्कर्ष अवस्था वाली प्रज्ञा (बुद्धि) होती है, उनमें पहली चार कार्य विमुक्ति प्रज्ञा कहलाती हैं जो कर्तव्य शून्य अवस्था के रूप में होती हैं। 1. ज्ञेयशून्य 2. हेयशून्य 3. प्राप्यप्राप्त 4. चिकीर्षा शून्य और अन्तिम तीन चित्तविमुक्ति प्रज्ञा कहलाती है, जो चित्तशून्य अवस्था के रूप में होती हैं उनका वर्णन इस तरह से है- 1. चित्त की कृतार्थता 2. गुणलीनता 3. आत्म स्थिति। इन सात प्रकार की प्रान्तभूमि प्रज्ञाओं को अनुभव करने वाला साधक जीवनमुक्त कहलाता है और जब चित्त अपने कारण में लीन हो जाता है तो वह विदेहमुक्त कहलाता है।30

संयम योग : मुनि पतंजलि के अनुसार - 'त्रयमेकत्र संयमः'31 अर्थात्- किसी एक ध्येय पदार्थ में धारणा, ध्यान और समाधि की एक साथ उपस्थिति संयम कहलाती है।

'तज्जयात्प्रज्ञालोकः'32 अर्थात्- संयम दृढ़ होने पर अलौकिक ज्ञान शक्ति प्राप्त होती है।

ज्ञान योग : मुनि पतंजलि के अनुसार - 'सत्त्वपुरुषयोरत्यन्तासंकीर्णयोः प्रत्ययाविशेषो भोगः परार्थात्स्वार्थसंयमात्पुरुषज्ञानम्'33 अर्थात्- बुद्धि और पुरुष दोनों ही सर्वथा भिन्न हैं और उनका कोई संयोग नहीं है। 'तस्य हेतुरविद्या'34 अर्थात् - उनके संयोग का कारण अविद्या है। 'दृग्दर्शनशक्त्योरेकात्मतेवास्मिता'35 अर्थात् - दृक शक्ति और दर्शन शक्ति इन दोनों का एक रूप-सा हो जाना अस्मिता है। इनकी एकता के कारण दोनों का अलग-अलग ज्ञान एक साथ-सा मिला हुआ-सा प्रतीत होता है। चूंकि बुद्धि परिणामशील, जड़, भोग्या और चंचल है तथा पुरुष अपरिणामी, चेतन, भोक्ता और असद है। इन दोनों का पृथकज्ञान पौरुषेय वृत्ति (स्वार्थ वृत्ति) में संयम करने पर पुरुष का ज्ञान होता है। यद्यपि ज्ञान, बुद्धि का धर्म है अतः उस बुद्धि के धर्म रूप ज्ञान से पुरुष नहीं जाना जाता है, किन्तु बुद्धि में पुरूष का चेतन रूप प्रतिबिम्बित होता है, तो उसको बुद्धि रूपी दर्पण में अपना मुख देखने की भाँति पुरुष देखता है अर्थात्- पुरुष को अपने स्वरूप का बोध हो जाता है यानी वह (पुरुष) यह जान लेता है कि वह बुद्धि से सर्वथा भिन्न और असद36 है यह ज्ञानयोग की पराकाष्ठा है।

तारक योग : मुनि पतंजलि के अनुसार - 'तारकं सर्वविषयं सर्वथाविषयमक्रमं चेति विवेकजं ज्ञानम्'37 अर्थात् - यह ज्ञान परवैराग्य उत्पन्न करके योगी की कैवल्य अवस्था का सम्पादन करने में हेतु है। इसलिए ज्ञानयोग को तारक अर्थात् - भव (संसार) सागर से तारने वाला अर्थात्- उद्धार करने वाला कहा है।

अष्टांग योग : मुनि पतंजलि ने योग सूत्र में अष्टांग योग का वर्णन राजयोग के रूप में किया है। योग सूत्र में अष्टांग योग का वर्णन साधन पाद के 29वें सूत्र से लेकर विभूतिपाद के तीसरे सूत्र तक किया है।

'यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टावधानि'38 अर्थात्- यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि ये योग के आठ अंग हैं। 'योगादनुष्ठानादशुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिराविवेकख्यातेः'39 अर्थात् - योग के अंगों का अनुष्ठान करने से अर्थात् - उनको अपने आचरण में लाने से चित्त के मल का सर्वथा अभाव होकर योगी के ज्ञान का प्रकाश विवेक ख्याति पर्यंत हो जाता है अर्थात्- योगी को आत्मा का स्वरूप, बुद्धि, अहंकार और इन्द्रियों से सर्वथा भिन्न प्रत्यक्ष दिखलाई पड़ता है।

अष्टांग योग के प्रथम पाँच अंग - यम, नियम, आसन, प्राणायाम और प्रत्याहार - बहिरंगयोग तथा हठयोग कहलाते हैं। ह = प्राण, ठ = अपान, ह और ठ का मिलन हठयोग = प्राणापान योग भी कहलाता है और अन्तिम तीन अंग धारणा, ध्यान और समाधि अन्तरंग योग तथा किन्हीं-किन्हीं ग्रन्थों में राजयोग के रूप में वर्णित है। यह अन्तरंग योग निर्बीज समाधि के संदर्भ में बहिरंग योग कहलाता है। 'तदपि बहिरंग निर्बीजस्य'40 अर्थात्- धारणा, ध्यान और समाधि निर्बीज समाधि के बहिरंग साधन हैं। निर्बीज समाधि में सब प्रकार की वृत्तियों का अभाव हो जाता है। अतः ये तीनों उसके अन्तरंग साधन नहीं हो सकते हैं। समाधि योग के अन्तर्गत विविध प्रकार की समाधियों का वर्णन योग दर्शन में किया गया है।

समाधि योग : मुनि पतंजलि के अनुसार - 'तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः'41 अर्थात्- जब (ध्यान में) केवल ध्येय मात्र की ही

प्रतीति हो और चित्त का निजस्वरूप शून्य-सा हो जाए, तब वही (ध्यान) समाधि कहलाता है। मुनि पतंजलि ने योगसूत्र में सम्प्रज्ञात और उसके भेद सबीज समाधि के रूप में तथा धर्ममेघ समाधि और निर्बीज-असम्प्रज्ञात समाधि का वर्णन किया है।

सम्प्रज्ञात समाधि : ऐसा साधक जिसकी समस्त बाह्य वृत्तियाँ क्षीण हो चुकी हैं और चित्त स्फटिक मणि की भाँति निर्मल हो चुका है, जो ग्रहीता (पुरुष), ग्रहण (अन्तःकरण और इन्द्रियाँ) तथा ग्राह्य (पञ्चभूत और विषय) में स्थित और तदाकार-सा हो जाए, सम्प्रज्ञात समाधि कहलाती है।42

सम्प्रज्ञात योग - 'वितर्क विचारानन्दास्मित अनुगमात्सम्प्रज्ञात्ः'43 सम्प्रज्ञात योग के अन्तर्गत - वितर्क, विचार, आनन्दानुगत और अस्मितानुगमात समाधि का वर्णन किया है जिसमें वितर्क समाधि के दो प्रकार हैं- 1. सवितर्क 2. निर्वितर्क। विचार समाधि के भी दो प्रकार हैं- 1. सविचार 2. निर्विचार। 'ता एव सबीजः समाधिः'44 अर्थात्- वे सब की सब सबीज समाधि हैं, क्योंकि इनमें बीजरूप से किसी न किसी ध्येय पदार्थ को विषय करने वाली चित्तवृत्ति का अस्तित्व-सा रहता है। लेकिन इस अवस्था में साधक को कैवल्य अवस्था का लाभ नहीं मिलता है। इन चार प्रकार की समाधियों मंे निर्विचार समाधि ही सबसे श्रेष्ठ है।

'निर्विचार वैशारद्येऽध्यात्मप्रसादः'45 अर्थात् - निर्विचार समाधि के अत्यन्त निर्मल होने पर योगी की बुद्धि अत्यन्त स्वच्छ, निर्मल तथा पवित्र हो जाती है, ऐसी पवित्र बुद्धि वस्तु के यथार्थ स्वरूप को ग्रहण करने वाली होती है। 'प्रसंख्यानेऽप्यकुसीदस्य सर्वथा विवेकख्याते-धर्ममेघः समाधिः'46 अर्थात्- जब विवेक ज्ञान का उदय होता है, तब योगी के चित्त में अत्यन्त स्वच्छता आ जाती है और उसमें विलक्षण शक्तियों तथा सर्वज्ञता का प्रादुर्भाव होता है। ऐसे सामर्थ्य को प्राप्त करने पर भी योगी का वैराग्य दृढ़ बना रहे तो उसका विवेक ज्ञान सर्वथा प्रकाशमान रहने के कारण धर्ममेघ समाधि सिद्ध हो जाती है 'ततः क्लेशकर्मनिवृत्तिः'47 अर्थात्- धर्ममेघ समाधि से योगी के अविद्या आदि पंचक्लेशों तथा शुक्ल, कृष्ण, मिश्रित कर्म-संस्कार समूल नष्ट हो जाते हैं। अतः वह योगी जीवन मुक्त कहलाता है।

लययोग/आत्मयोग : जब साधक जीवन मुक्त हो जाता है तो उस समय स्वभाव से भी चित्त संसार के पदार्थों की ओर नहीं जाता है। वह चित्त उनसे अपने आप उपरत होने लगता है48 और विवेक ज्ञान जनित संस्कार के प्रभाव से अन्य सभी प्रकार के संस्कारों का भी अभाव होने लगता है फिर ऋतम्भरा प्रज्ञाजनित संस्कारों में भी आसक्ति न रहने के कारण उनका भी निरोध अपने आप हो जाता है। ऐसी अवस्था में चित्त की वृत्तियों का सर्वथा अभाव हो जाता है49 समाधि जनित विवेक ज्ञान द्वारा चित्त और आत्मा के भेद को प्रत्यक्ष कर लेने वाले योगी की आत्म भाव विषयक भावना सर्वथा निवृत्त हो जाती है50 ऐसी अवस्था में योगी का चित्त विवेक ज्ञान में निमग्न होकर कैवल्य के अभिमुख होता है और यह ज्ञान समाधि की निर्मलता-स्वच्छता होने पर और अधिक निश्चल तथा पूर्ण हो जाता है। उसमें किसी प्रकार भी मल नहीं रहता है, तब वह अविप्लव विवेक ज्ञान कहलाता है। यह अविप्लव विवेक ज्ञान समस्त दुःखों की आत्यान्तिक निवृत्ति कर मुक्ति का साधन मात्र है।51 चित्त अपने प्रयोजन को पूरा कर चुकने वाले कार्य और कारण रूप में विभक्त

हुए गुण प्रतिलोम परिणाम को प्राप्त कर अपने आश्रय रूप महतत्त्व आदि के सहित अपने कारण में विलीन हो जाता है52 लययोग कहलाता है तथा प्रकृति का जो स्वाभाविक परिणाम क्रम है वह उसके लिए बन्द हो जाता है।53 यही गुणों का कैवल्य है अर्थात्- पुरूष से अलग हो जाना है।54 और उन गुणों के साथ पुरूष का जो अनादि सिद्ध अविद्याकृत संयोग था, उसका अभाव हो जाने पर अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित हो जाना, यह पुरुष का कैवल्य अर्थात् प्रकृति से सर्वथा अलग हो जाना है।55 अतः प्रकृति के संयोग का आत्यान्तिक अभाव हो जाने पर दृष्टा की अपने स्वरूप में स्थिति हो जाती है : 'तदा द्रष्टुःस्वरूपेऽवस्थानम्'56 अर्थात् - जब चित्तवृत्तियों का सम्पूर्ण निरोध हो जाता है उस समय दृष्टा (आत्मा) का अपने स्वरूप में स्थित हो जाना आत्म योग कहलाता है इसी को असम्प्रज्ञात योग, निर्बीज समाधि और कैवल्य अवस्था कहा गया है।57

निष्कर्ष

भारतवर्ष में योगियों और संन्यासियों की प्राचीन परम्परा रही है। योग से शरीर को त्यागने के ऐसे अनेक उदाहरण मौजूद हैं। विज्ञान के बढ़ते प्रभुत्व ने अनेक बार इस विद्या को शंका के घेरे में डाला है, लेकिन जैसे-जैसे विज्ञान ज्ञात की ओर बढ़ता जाता है, वैसे-वैसे उसके सामने अज्ञात की नई चुनौतियाँ उपस्थित हो जाती हैं। हमारे यहाँ धर्म ग्रंथों में 'नेति नेति' शब्द का उपयोग किया गया है, अर्थात यह भी नहीं, यह भी नहीं और विज्ञान में निरंतर होने वाली खोजें भी इसी सिद्धांत का पालन करती दिखाई देती हैं। योगशास्त्र में बहिरंग और अन्तरंग दोनों को साधने की कला को सूत्र रूप में कहा गया है। जीवन में समत्व प्राप्त करने के लिए योग को अपनाना आवश्यक है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. भारतीय दर्शन, शोभा निगम, पृष्ठ 145
2. सांख्य एवं योग दर्श, पंडित श्री राम शर्मा आचार्य, पृष्ठ 4
3. भारतीय मनोविज्ञान, प्रो. लक्ष्मी शुक्ला, पृष्ठ 31-32
4. भारतीय दर्शन की रूपरेखा, प्रो. हरेन्द्र प्रसाद सिन्हा, पृष्ठ 270
4. भारतीय दर्शन की रूपरेखा, प्रो.हरेन्द्र प्रसाद सिन्हा, पृष्ठ 270
5. पातंजल योग दर्शन, जयदयाल गोयन्दका, पृष्ठ 125
6. योगसूत्र, 1/2
7. योगसूत्र, 1/12
8. योगसूत्र, 1/23
9. पातंजल योग प्रदीप, स्वामी ओमानन्द तीर्थ, पृष्ठ 190
10. नारद भक्ति सूत्र, 1/2
11. योगसूत्र, 1/27
12. योगसूत्र, 1/28
13. पातंजल योग दर्शन, जयदयाल गोयन्दका, पृष्ठ 18
14. प्रश्न उपनिषद्, पृष्ठ 190
15. माण्डूक्य उपनिषद्, पृष्ठ 270
16. योगसूत्र, 3/2
17. ध्यान योग, स्वामी शिवानन्द सरस्वती, पृष्ठ 108
18. ध्यान योग, स्वामी शिवानन्द सरस्वती, पृष्ठ 109
19. योगसूत्र, 1/39
20. योगसूत्र, 1/29
21. योगसूत्र, 2/1
22. पातंजल योग दर्शन, जय दयाल गोयन्दका, पृष्ठ 33

23. पातंजल योग दर्शन, जय दयाल गोयन्दका, पृष्ठ 22
24. श्रीमद् भगवद्गीता, 4/28
25. पातंजल योग दर्शन, जय दयाल गोयन्दका, पृष्ठ 34
26. योगसूत्र, 2/2
27. योगसूत्र, 2/45
28. योगसूत्र, 1/48
29. योगसूत्र, 2/27
30. पातंजल योग दर्शन, जय दयाल गोयन्दका, पृष्ठ 51-52
31. योगसूत्र, 3/4
32. योगसूत्र, 3/5
33. योगसूत्र, 3/35
34. योगसूत्र, 2/24
35. योगसूत्र, 2/6
36. पातंजल योग दर्शन, जय दयाल गोयन्दका, पृष्ठ 88-89
37. योगसूत्र, 3/54
38. योगसूत्र, 2/29
39. योगसूत्र, 2/28
40. योगसूत्र, 3/8
41. योगसूत्र, 3/3
42. योगसूत्र, 1/41
43. योगसूत्र, 1/17
44. योगसूत्र, 1/46
45. योगसूत्र, 1/47
46. योगसूत्र, 4/29
47. योगसूत्र, 4/30
48. पातंजल योग दर्शन, जयदयाल गोयन्दका, पृष्ठ 12
49. पातंजल योग दर्शन, जयदयाल गोयन्दका, पृष्ठ 32
50. पातंजल योग दर्शन, जयदयाल गोयन्दका, पृष्ठ 121
51. पातंजल योग दर्शन, जयदयाल गोयन्दका, पृष्ठ 51
52. पातंजल योग दर्शन, जयदयाल गोयन्दका, पृष्ठ 125
53. पातंजल योग दर्शन, जयदयाल गोयन्दका, पृष्ठ 51
54. पातंजल योग दर्शन, जयदयाल गोयन्दका, पृष्ठ 125
55. पातंजल योग दर्शन, जयदयाल गोयन्दका, पृष्ठ 12
56. योगसूत्र, 1/2
57. पातंजल योग दर्शन, जयदयाल गोयन्दका, पृष्ठ 12